पितृसत्तात्मक समाज और महिलाओं की स्थितिः एक समग्र विश्लेषण

प्राप्तिः 30.11.25
स्वीकृतः 10.12.25

86

डॉ. पुष्पा भट्ट
सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र विभाग)
हु. सिं. बो. राज. स्नात. महाविद्यालय
सोमेश्वर, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
ईमेलः*pushpahhatthld@gmail.com*

सारांश

प्राचीन समय से लेकर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय समाज में पुरुषों को महिलाओं की तुलना में आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक व सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठता प्रदान की गई है साथ ही निर्णय लेने की प्रक्रिया, संसाधनों व विचारधारा पर भी पुरुषों का स्वामित्व व नियंत्रण रहता है। समाज ने परिवार, धर्म, संस्कृति, सामाजिक मूल्य परंपराओं आदि के आधार पर मन–गढ़ंत कहानियां बनाकर महिलाओं को विवशता की बेड़ियों में जकड़ कर रख दिया है। सभी स्थानों पर तो नहीं पर भारत के अधिकांश हिस्सों पर लड़कियां व महिलाएं असुविधाओं, डर ,भय व बोझ तले जीवन बिताती हैं। यद्यपि इक्कीसवीं सदी में महिलाओं की स्थिति में अनेक बदलाव हुए हैं शिक्षा, स्वास्थ्य विभिन्न प्रकार के रोजगार अवसर आदि में उनकी सहभागिता बढ़ी है मगर यह भी सच है कि महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की संख्या में भी दोगुनी –तिगुनी वृद्धि हुई है। महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता ,आर्थिक स्वायत्तता, निर्णय लेने की स्वतंत्रता आदि पक्षों ने पितृसत्तात्मक समाज के समक्ष चुनौती को उत्पन्न किया है। सरकार द्वारा महिला हितों को ध्यान में रखते हुए लागू किए गए कानूनी प्रावधान निस्संदेह महत्वपूर्ण कदम कहे जा सकते हैं फिर भी पितृसत्तात्मक मानसिकता के साथ विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार और उनके खिलाफ हिंसा का प्रयोग करना अब भी एक चुनौती है। आज जिस चीज की जरूरत है वह है उन जेण्डरीकृत भूमिकाओं में अभिवृत्तिमूलक परिवर्तन की, जो पितृसत्तात्मक क्षेत्र में बहुत लंबे समय से लागू होती चली आ रही है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त प्रदत्तों पर आधारित है।

मुख्य शब्द

पितृसत्ता, पुरुषत्व, हिंसा, लैंगिक भेदभाव।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i04.86

भारत ही नहीं बल्कि विश्व के अधिकांश देशों की महिलाएं आरम्भ से ही भेदभाव का शिकार होती आई है। सभी स्तरों में निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रखी जाती रही है, अधिकार विहीन रही है। इसका कारण पितृसत्ता का प्रचलन में होना है। यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरुषों को महिलाओं की तुलना में श्रेष्ठ समझा जाता है जहां निर्णय लेने की प्रक्रिया, संसाधनों तथा विचारधारा पर पुरुषों का स्वामित्व व नियंत्रण रहता है। महिलाओं पर हिंसा पितृसत्ता का ही अंग है। समाज ने परिवार, धर्म, नैतिकता, संस्कृति, सामाजिक मूल्य, रुढ़िवादी परम्पराएं, शक्ति संरचना आदि के आधार पर मन–गढ़ंत कहानियां बनाकर महिलाओं को विवशता की बेड़ियों में जकड़ कर रख दिया है। सभी स्थानों पर तो नहीं पर भारत के अधिकांश हिस्सों पर लड़कियां असुविधाओं, डर, भय व बोझ तले जीवन बिताती हैं। उपेक्षा व भेदभाव सहती है घर–परिवार के कामों का बोझ उठाती है। कोख में ही खत्म किये जाने का भय, देखभाल, पोषण, चिकित्सकीय सुविधाएं व पूर्ण शिक्षा न मिलने के भय के साथ–साथ छेड़छाड़ व यौन उत्पीड़न के डर के साथ जीती हैं। विवाह के बाद भी उन्हें अकेलेपन, शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। कड़े कानून पारित होने के बाद भी जघन्य सामूहिक दुष्कर्मों की संख्या बढ़ती जा रही है।[1] मौजूदा दौर में महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा अपने क्रूरतम रूप में सामने आ रही है।

पितृसत्ता

पितृसत्ता शब्द का प्रयोग पुरुषों के प्रभुत्व तथा उन शक्ति संबंधों को इंगित करने के लिए किया जाता है जिनके माध्यम से पुरुष महिलाओं पर अपना वर्चस्व स्थापित करते है। सिल्विया वाल्वी[2] ने पितृसत्ता को सामाजिक संरचना व प्रथाओं की एक प्रणाली के रूप में बताया है जिसमें पुरुषों की प्रधानता होती है तथा महिलाओं का दमन व शोषण किया जाता है। लर्नर[3] पितृसत्ता को परिवार में महिलाओं व बच्चों पर पुरुष प्रभुत्व के संस्थाकरण तथा समाज में महिलाओं पर पुरुष सत्ता के विस्तार के रूप परिभाषित करते है। वर्तमान में पितृसत्ता संस्थागत रूप से परिवार , समाज तथा राज्य की विविध संरचनाओं में अपनी पैठ बनाए हुए हैं क्योकि ये तीनो पितृसत्ता के वाहक है।

पितृसत्तात्मक संरचना

प्रमुख ब्रिटिश समाजशास्त्री सिल्विया वाल्वी का मानना है कि पैतृक सत्ता छः संरचनाओं से बनी होती हैः उत्पादन का पितृ प्रधान तरीका, भुगतान संबंधी कार्य में पैतृक संबंध, पित्रसत्तात्मक राज्य, पुरुष हिंसा, यौनिकता में पितृसत्तात्मक संबंध एवं पितृ सत्तात्मक संस्कृति।[4] वाल्वी द्वारा दिया गया वर्गीकरण परिस्थिति सापेक्ष होने के साथ ही दोहराव की स्थिति को भी दर्शाता है। वाल्वी का मानना है कि पितृसत्तात्मक संबंधों में जहा एक ओर स्त्री के उत्पादन पर पुरुष का अधिकार होता है वही दूसरी ओर स्त्री के मेहनताने पर भी पुरुष का ही अधिकार समझा जाता है। उत्पादन का पितृ प्रधान तरीका और भुगतान संबंधी कार्य में पितृसत्तात्मक संबंध दोनों में कोई संरचनात्मक विभेद परिलक्षित नहीं हो रहा है। अतः दोनों को एक संरचनात्मक भेद मानते हुए इसे 'श्रम विभाजन में पितृसत्तात्मक संबंध' किया जा सकता है तथा पुरुष हिंसा, स्त्री यौनिकता में पितृसत्तात्मक संबंध व पितृसत्तात्मक संस्कृति इन तीनों को एक संरचनात्मक समूह यानि "पितृसत्तात्मक संस्कृति' में सम्मिलित किया जा सकता है क्योंकि पुरुष हिंसा द्वारा ही स्त्री यौनिकता पर नियंत्रण किया जाता है जिसकी शरणस्थली पितृसत्तात्मक संस्कृति ही है। इस

प्रकार मुख्य रूप से पितृसत्ता की तीन संरचनाएं परिलक्षित होती हैं – श्रम विभाजन में पित्तसत्तात्मक संबंध, पितृसत्तात्मक राज्य एवं पितृसत्तात्मक संस्कृति ।[5]

1. श्रम विभाजन में पितृसत्तात्मक संबंध

आदिम समाज में श्रम विभाजन में लैंगिक भेदभाव नहीं था पुरुष व महिलाएं शिकार करने व खाद्य पदार्थ संग्रह में एक समान थे। इसके साक्ष्य मध्य भारत में प्राप्त हुए 5000 ईसा पूर्व (मध्यपाषाण कालीन) की भीमबेटका की गुफाओं के चित्रों में देखने को मिले हैं। शुरुआती दौर में श्रम विभाजन में स्त्री पुरुष संबंध पितृसत्तात्मक नहीं थे परंतु आगे चलकर कृषि के उद्‌गम से निजी संपत्ति का बोध हुआ इस निजी संपत्ति पर स्वामित्व बनाये रखने हेतु– इसे अपने रक्त संबंधियों विशेषकर पुत्र को हस्तांतरित करने तथा उत्तराधिकारियों की वैधता सुनिश्चित करने के लिए एकल विवाह की शुरुआत हुई। महिलाओं के यौनाचार को नियंत्रित किया गया।[6] आगे चलकर श्रम का विभाजन लिंग के आधार पर किया गया। इस संदर्भ में एंजिल्स[7] का मानना था कि संतान उत्पन्न करने हेतु स्त्री पुरुष के बीच श्रम विभाजन ही पहला श्रम विभाजन था। पुरुष के लिए संतान निजी संपत्ति हो गई जिस पर स्त्री का कोई अधिकार नहीं रह गया। पुरुषों द्वारा घर की बागडोर संभाली गई अपने लिए अधिकारों को रखा गया और महिलाएं पुरुषों की वासना की दासी तथा मात्र संतान उत्पन्न करने का एक स्रोत बनकर रह गई। यही से श्रम विभाजन में पितृसत्तात्मक संबंधों का आरम्भ हुआ।[8] सभ्यता के आरंभ से ही लिंग आधारित श्रम विभाजन की जो रेखा खींची गई थी धीरे–धीरे वह गहरी होती गई जिसमे महिलाओं के हिस्से घर के काम आये जबकि पुरुषों के हिस्से धन कमाना। आर्थिक सबलता प्रभुत्व का भाव उत्पन्न करती है और इसे पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था किसी भी दशा में छोड़ने को तैयार नहीं है।

2. पितृसत्तात्मक संस्कृति

पारंपरिक सामाजिक नियम, मानदंड व धार्मिक मान्यताएं पितृसत्तात्मक संस्कृति के अंतर्गत आते है जो पितृसत्ता को संस्थागत रूप प्रदान करते है। सशक्त पितृसत्ता एवं पारंपरिक जेंडर भूमिकाएं भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति में अपना अहम् योगदान देते हैं। जेंडर भूमिकाओं का तात्पर्य सामाजिक रूप से निर्मित उन मानकों व विचारधाराओं से है जो पुरुषों व महिलाओं के व्यवहारों, व कार्यों का निर्धारण करते हैं। ये जेंडर भूमिकाएं पुरुषसूचक व स्त्री सूचक भूमिकाओं के रूप में होती हैं जो जीव वैज्ञानिक लक्षणों से सम्बद्ध न होकर समाज द्वारा रचित होती हैं इसीलिए सिमोन द बोउवार का मानना था कि स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है। समाज में परिवार, मित्र समूह, शैक्षणिक संस्थाएं, धर्म, मीडिया व अन्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाएं सभी जेंडरीकरण के अभिकरण हैं। ये अभिकरण समाज व संस्कृति में लड़कों के लिए पुरुषत्व तथा लड़कियों के लिए स्त्रीत्व की निर्मितियों को आकार प्रदान करते रहते हैं जिससे जेंडरीकृत समाजीकरण को बढावा मिलता है। इसमें परिवार की प्रमुख भूमिका होती है। सर्वप्रथम परिवार ही बच्चों का जेंडरीकृत तरीके से समाजीकरण करता है इसी वजह से बच्चों को प्रारंभिक अवस्था से ऐसे संकेत प्राप्त होने लगते हैं जिससे उनका व्यक्तित्व लड़के और लड़कियों की तरह ढलने लगता है। जेंडर भूमिकाओं की रचना में पितृसत्ता का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i04.86

3. पितृसत्तात्मक राज्य

राज्य समाज में सत्ता, शक्ति व प्रभावशाली संस्थाओं के प्रयोजन का स्थल है। पित्तसत्तात्मक समाज के सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं पर प्रभुत्व अधिक सूक्ष्म व दीर्घस्थायी प्रकार का होता है। यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित न होकर बनाई गई कल्याणकारी नीतियों, कानूनों, विधान मंडल तथा सामाजिक संस्थानों में सूक्ष्म रूप से व्याप्त होता है जिसका उद्देश्य पितृसत्ता के लक्ष्यों को सुदृढ़ बनाए रखना है। विश्व के अधिकतर देशों की तरह भारत देश में भी पितृसत्ता ने राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को सीमित करके उनकी अनुचित व हाशियाकृत स्थिति को वैध बनाया है।

महिलाओं पर पितृसत्तात्मकता का प्रभाव

पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था है जिसकी विषेशताएं सभी समाज में एक जैसी बनी रहती हैं । पितृसत्ता जिस तरीके से अपने हितों की रक्षा करती है तथा उन्हें लागू करती है वह तरीके संस्कृति एवं धर्म जैसे कारकों पर निर्भर होते हैं। भारतीय पितृसत्ता का सबसे मूलभूत अभिलक्षण महिलाओं के विरुद्ध किया जाने वाला भेदभाव है। पुरुषों के प्रभुत्व एवं इसके परिणामस्वरुप पुरुषों की सत्ता की रक्षा किए जाने के कारण महिलाएं स्वाभाविक ही पुरुषों के अधीन हो जाती हैं और इसीलिए महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाने लगता है। पितृसत्तात्मक समाज पुरुषत्व और स्त्रीत्व की धारणाओं को निर्मित करता है। पुरुषत्व और स्त्रीत्व की संकल्पना में पुरुषवाचक एवं स्त्रीवाचक विशेषताएं व संभावित व्यवहार सम्मिलित हैं जो सामाजिक रूप से निर्मित होते हैं। ऐसे व्यवहार पुरुषों व महिलाओं को एक तयशुदा ढांचे में खांचाबद्ध कर देते हैं।[9] पितृसत्ता एवं पुरुषत्व आपस में निकटता से जुड़े हुए हैं। पुरुषत्व से आक्रामकता और प्रभुत्व जैसी पारंपरिक रूप से जुड़ी हुई अनेक नकारात्मक विशेषताएं पितृसत्ता के कार्य हैं। पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुषों की हिंसा एवं आक्रामकता का औचित्य पुरुषत्व की निशानी के तौर पर स्थापित किया जाता है। इन दोनों के बीच के चक्रीय सम्बन्ध को निम्न डायग्राम के द्वारा प्रस्तुत किया गया है –

पितृसत्ता और पुरुषत्व के बीच सम्बन्ध

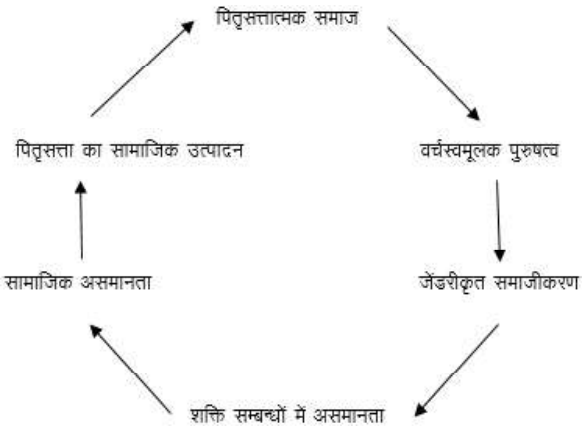

स्रोत : https://egyankosh.ac.in/handle/123456789/68271 Pg. 42.

एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में महिलाएं प्रतिदिन अपना 73 फीसदी मूल्यवान समय ऐसे कार्य में व्यतीत कर देती है जिसके लिए उन्हें कोई भी वेतन नहीं दिया जाता है जबकि पुरुष प्रतिदिन का औसतन 11 फीसद समय ही ऐसे कार्यों में व्यतीत करते है।[10] बीते वर्ष सर्वोच्च न्यायालय द्वारा, 17 वर्ष पूर्व उत्तराखंड वाहन दुर्घटना में एक महिला की मौत पर मुआवजे की मांग से जुड़ी सुनवाई में कहा गया कि गृहिणी का परिवार के लिए दिया गया योगदान अमूल्य व उच्च कोटि का होता है भले ही इसका मौद्रिक आकलन नहीं किया जा सकता पर अपनो की देखभाल करने वाली इस भूमिका का विशेष महत्त्व है।[11]वर्ष 1968 से 2021 तक मोटर वाहन क्षतिपूर्ति से संबंधित लगभग 200 मामलों में बीमा कंपनियों द्वारा गृहिणियों के कार्यों को मूल्यहीन आंकना, यह दर्शाता है कि समाज महिलाओं के परिश्रम, त्याग के प्रति कितना असंवेदनशील है। महिलाओं के परिश्रम एवं योगदान को, जो वे अपने घर–परिवार के लिए देती है लाभ हानि के तराजू में तौलना बिल्कुल भी न्याय संगत नहीं है।[12]

विश्व आर्थिक मंच द्वारा जारी वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट– 2024 के अनुसार भारत 146 देशों में 129 वें स्थान पर रहा है जो पूर्व वर्ष (2023) की तुलना में दो स्थान नीचे खिसक गया है। लैंगिक समानता के मामले में दक्षिण एशिया प्रांत में भारत अपने पड़ोसी देशों बांग्लादेश, नेपाल ,भूटान एवं श्रीलंका से पीछे है यद्यपि भारत में, पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के लिए आर्थिक भागीदारी व अवसरों में कुछ सुधार हुआ है तब भी यह वर्ष 2012 के 46 प्रतिशत आर्थिक समानता के आंकड़े तक नहीं पहुंच पाया है।[13] वहीं शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं में साक्षरता दर के बीच का फासला 17.2 प्रतिशत अंक का है जिससे भारत शैक्षिक उपलब्धि के संकेतक पर 124 वें स्थान पर रहा है। देश ने राजनीतिक सशक्तीकरण सूचकांक पर बेहतर प्रदर्शन किया है लेकिन संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी बहुत कम है। वर्तमान में संसद में 543 सदस्यों में महिला सदस्यों की संख्या 74 है जो की कुल सदस्यता का 13.6 प्रतिशत है। यह आकड़ें महिला आरक्षण विधेयक 2023 की पृष्ठभूमि में एक अच्छा संकेत नहीं है जो कि अभी लागू भी नहीं हुआ है। यह स्थिति तब है जबकि महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में बाधाओं को पार करते हुए एक अलग मुकाम बनाया है।[14]

पिछले लगभग तीन दशकों के दौरान शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल ,परिवार नियोजन और रोजगार के अवसरों तक पहुँच आदि के मामलों में महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुए है परन्तु आज भी कई क्षेत्र ऐसे हैं जहां पुरुषों का व्यापक स्तर पर दबदबा है। वायु सेना, नौसेना तथा थल सेना में महिलाओं की संख्या लगभग क्रमशः 14, 6 और 4 फीसदी है।[15] देश में लगभग 53 प्रतिशत लड़कियां साइंस से ग्रेजुएट हो रही है लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में, रोजगार में महिलाओं की भागीदारी मात्र 14 प्रतिशत है।[16] आखिर क्या वजह है जो साइंस एवं रिसर्च के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी इतनी कम है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक स्तर पर स्वास्थ्य के क्षेत्र में महिलाओं की हिस्सेदारी 67 फीसदी है जबकि उन्हें पुरुषों की तुलना में 24 फीसदी कम वेतन मिलता है। अधिकृत आंकड़ों के अनुसार 35 देशों में महिला डॉक्टरों की संख्या लगभग 25 से 60 फीसदी है जबकि नर्सिंग के क्षेत्र में महिलाओं (नर्स एवं दाइयों) की संख्या 30 से 100 फीसदी के मध्य है। आंकड़े दर्शाते हैं कि निर्णय लेने वाले पदों पर महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है साथ ही महिला और पुरुष की आय में भी काफी अंतर है। यह अंतर परिवार और समुदायों में

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i04.86

महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ होने से रोकता है।[17] अधिकांशतः महिलाओं की कम भागीदारी का प्रमुख कारण उन पर बरसों से चली आ रही पारम्परिक जेंडर अपेक्षाओं एवं प्रथाओं का बोझ होना है। महिलाओं को अभी भी घर–परिवार बनाने वाली और बच्चों का पालन पोषण करने वाली पारंपरिक और पितृसत्ता–प्रेरित भूमिकाओं के दायरे में ही देखा जाता है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एवं आक्रामकता पुरुषत्व की सामाजिक रूप से स्वीकृत विशेषताएं है जो पितृसत्ता में शक्ति को लागू करती है। यद्दपि महिलाएं हिंसा का शिकार सदियों से हो रही है परन्तु मौजूदा दौर में महिलाओं पर होने वाली हिंसा में काफी वृद्धि हुई है। यदि इसे अधिक गहराई में जाकर देखें तो पितृसत्ता पर आधारित परिवार, समाज एवं राज्य तीनो मिलकर पुरुषों के माध्यम से महिलाओं पर हिंसा करते है। हिंसा का कहर सर्वप्रथम परिवार से शुरू होता है। आज घरेलू हिंसा एक व्यापक त्रासदी बन चुकी है। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट– 2022 के अनुसार भारत में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में चार फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। वर्ष 2020 में हिंसा से संबंधित मामले लगभग 3,71,503 थे जो कि वर्ष 2022 में 4,45,256 तक पहुंच गए। इसमें पतियों और रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता, हमले ,अपहरण व दुष्कर्म से संबंधित मामले सम्मिलित हैं।[18] महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों के मामलों की गंभीरता का अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि ये अपराध दर्ज हुए हैं। जहां तक घरेलू हिंसा की बात करें तो अक्सर पारिवारिक व सामाजिक सम्मान की दुहाई देकर, घर में ही सुलझाने की बात कह कर इस तरह के मामलों को परिवार के भीतर ही छुपा दिया जाता है।

महिलाओं का अधिकारों के लिए संघर्ष

महिलाओं का अपने अधिकारों के लिए संघर्ष लंबा एवं जटिल रहा है जो कि 19वीं सदी से लेकर के आज भी जारी है। 1829 में राजा राममोहन राय ने लॉर्ड विलियम बैंटिक के सहयोग से सती प्रथा को प्रतिबंधित किया । 1867 में आत्माराम पांडुरंग ने महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह और ,बाल विवाह के उन्मूलन जैसे मुद्दों पर समाज को जागरूक करने का प्रयास किया। महिला अधिकार हेतु हुए आंदोलनों में गांधीजी की भी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। गांधी जी के आह्वान पर ही महिलाओं ने राजनीति में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई साथ ही आर्थिक स्वतंत्रता एवं अधिकारों के लिए भी आवाज उठाई । 1917 में वीमेंस इंडिया एसोसिएशन, 1927 में अखिल भारतीय महिला परिषद व 1934 में ज्योति संघ जैसे संगठनों ने महिला अधिकार की आवाज को और अधिक बुलंद किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में महिलाओं को विवाह, उत्तराधिकार एवं संरक्षणता के विस्तृत अधिकार प्राप्त हुए परंतु महिलाओं की आर्थिक स्थिति को बेहतर करने के कोई ठोस उपाय देखने को नहीं मिले। वर्ष 1976 में सरकार द्वारा 'समान पारिश्रमिक अधिनियम' पारित किया गया लेकिन यह कानून व्यावहारिक रूप से निष्क्रिय ही रहा। इसी दौरान महिला मजदूरों की स्थिति को बेहतर करने हेतु कई महिला संगठन अस्तित्व में आए। महिला संगठनों ने राष्ट्रीय स्तर पर दहेज प्रथा ,घरेलू हिंसा, मद्यपान व कार्यस्थल पर भेदभाव आदि मुद्दों पर भी विरोध दर्ज किया। तत्पश्चात वर्ष 1984 में 'दहेज निषेध अधिनियम 1961' को संशोधित किया गया ताकि दहेज लेने व देने से संबंधित अपराधों को रोकने के लिए सजा को कठोर बनाया जा सके।[19]

वर्ष 1992 में महिलाओं के हितों की रक्षा एवं उनके अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया जो की एक वैधानिक संस्था के रूप में स्थापित है। तत्पश्चात 'घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005' लाया गया जो कि सभी महिलाओं को घर के निजी दायरे में हिंसा से मुक्त जीवन जीने के अधिकार को मान्यता देता है। वर्ष 2013 में 'कार्य स्थल पर महिला यौन उत्पीड़न (रोकथाम ,निषेध और निवारण) कानून' बनाकर एक बड़ा कदम उठाया गया इसके तहत महिलाओं को कार्यस्थल पर अनुकूल व सुरक्षित वातावरण प्रदान करने हेतु कई उपबंध किए गए।[20] और इसी वर्ष आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम जिसमें बलात्कार जैसे अपराधों के लिए कठोर दंड का प्रावधान है, अस्तित्व में आया। यदि इन कानूनी प्रावधानों का सख्ती से पालन किया जाय तो ऐसी कोई वजह नहीं कि महिलाओं के प्रति अपराधों में कमी नहीं आए। मगर कहीं न कहीं कमी समन्वय और तालमेल की है जिससे कि अक्सर अपराधी छूट जाते हैं और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को अंजाम देते है।

भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता ,संपत्ति, शिक्षा, संवैधानिक उपायों तथा शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान किये गए है साथ ही राज्य भी महिलाओ के हितों की रक्षार्थ विशेष कानून बनाते रहे हैं। महिला अधिकारों के उपर्युक्त बिंदुओं पर चर्चा करते हुए इस बात पर भी हमें विचार करने की आवश्यकता है कि क्या उपर्युक्त वर्णित कानूनों व महिला हितों के संरक्षण के प्रावधानों के होते हुए भी महिलाओं की स्थिति में पूर्ण ईमानदारी से परिवर्तन आया है ? क्या महिलाओं के प्रति समाज की सोच में सकारात्मक परिवर्तन हुआ है ? क्या सामाजिक परिवेश महिलाओं के हितों के अनुकूल है ? यह कुछ ऐसे गंभीर व ज्वलंत प्रश्न है जो किसी भी सभ्य कहे जाने वाले राष्ट्र व समाज के लिए चिंतन का विषय होने चाहिए। यदि वास्तविकता के धरातल पर उपर्युक्त प्रश्नों की गंभीरता पर विचार किया जाय तो तस्वीर काफी धुंधली नजर आती है। महिलाओ के आंदोलन तथा सरकार द्वारा उठाये गए कदम ऐसा आभास देते हैं कि कुछ ऐसे सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक परिवर्तन लाए गए है कि स्त्रियों को शिक्षा, रोजगार व राजनीतिक भागीदारी में पुरुषों के समान अवसर प्रदान किए गए हैं, और उनके शोषण में कमी आई है परंतु यह परिवर्तन केवल सैद्धांतिक है। व्यवहार में वे आज भी पुरुषों के अधीनता की शिकार बनी हुई है। महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक व गुणात्मक सुधार हो इसके लिए यह जरूरी है कि कानूनी प्रावधानों के साथ ही समाज के हर वर्ग की सोच भी सकारात्मक हो।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अतीत काल से ही समाज में पुरुषों का वर्चस्व रहा जिसका व्यापक प्रभाव इस बात पर पड़ता था कि समाज और राष्ट्र विकास की जो भी योजनाएं बनाई जाती थी वह पूर्ण रूप से पुरुषवादी मानसिकता से संचालित होती रही। परिणाम यह रहा कि विकास की इस दीर्घकालीन यात्रा में महिलाएं काफी पीछे छूट गई। उनका स्थान घर की चारदीवारी तक सीमित हो गया था जिसके फलस्वरूप उनका विकास भी बाधित रहा। 21वीं सदी में महिलाओं की स्थिति में अनेक बदलाव आए हैं जिन्हें नकारा नहीं जा सकता है जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, सेना, खेल, सार्वजनिक क्षेत्र, विभिन्न प्रकार के रोजगार अवसर आदि में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है लेकिन यह भी तथ्य है कि महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की संख्या में भी दोगुनी– तिगुनी वृद्धि हुई है। क्या

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i04.86

यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की प्रगति एवं उनके विरुद्ध होने वाले अपराधों में कोई सकारात्मक सहसंबंध है क्योंकि महिलाओं में निर्णय लेने की स्वतंत्रता, आर्थिक स्वायत्तता, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, संपत्ति में समान अधिकार जैसे पक्षों ने पितृ सत्तात्मक समाज के समक्ष चुनौतियों को उत्पन्न किया है। जब तक महिलाएं आधिपत्य व दमन को स्वीकार करती है तब तक वह संस्कारी व सभ्य मानी जाती है परंतु जैसे ही वह अपने अधिकार या फिर अपने विरुद्ध होने वाले दुर्व्यवहार के विरोध में आवाज उठाती हैं तो उन पर उंगली उठा दी जाती है उन्हें अधीन करने के लिए उनके साथ हिंसा की जाती है। सरकार ने महिला हितों को गंभीरता से लेते हुए कई कानूनी प्रावधानों जैसे कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम ,तीन तलाक, यौन अपराध अधिनियम आदि को सख्ती से लागू किया है। उपरोक्त प्रावधान भारत जैसे एक बड़े लोकतंत्र में निस्संदेह महत्वपूर्ण कदम कहे जा सकते है फिर भी पितृसत्तात्मक मानसिकता के साथ विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को शिक्षा, पोषण और रोजगार के हक से महरूम करना और उनके खिलाफ हिंसा का प्रयोग करना अब भी एक चुनौती है। वास्तव में सरकार की सकारात्मक सोच को ईमानदारी से वास्तविकता के धरातल पर लाने की जिम्मेदारी समाज व उसमें रहने वाले नागरिकों की भी है। स्वामी विवेकानंद का मानना था कि देश की संपन्नता इस बात पर निर्भर करती है कि महिला व पुरुष दोनों के साथ समानता का व्यवहार किया जाए। वे मानते थे कि महिलाओं को भी योग्य, सक्षम एवं कामकाजी बनाना आवश्यक है क्योंकि देश के विकास में दोनों की भागीदारी समान है। अतः यह कहा जा सकता है कि महिलाओं को राजनीतिक अधिकार दिए बिना सामाजिक व्यवस्था में सुधार संभव नहीं हो सकता और सामाजिक व्यवस्था में बदलाव किये बिना उनका आर्थिक सशक्तिकरण सही अर्थों में आकर नहीं ले सकता । इन सबको वास्तविक धरातल में उतारने के लिए गांधी जी के इस सुझाव पर अमल करना जरूरी है कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन व्यक्ति की मानसिकता में बदलाव से ही संभव है ।

सन्दर्भ

1. भसीन कमला, 'भारतीय संदर्भ में नारी सशक्तिकरण 'योजना, सितंबर 2016, पृ० सं०–9–10.
2. Silvia Walby, 'Theorising Patriarchy', Sage Publication, Ltd, Vol. 23, No.2, May 1989, Pg. **214**
3. Gerda Lerner, 'The Creation Of Patriarchy' , Oxford University Press, New York, 1986, Pg. **239**.
4. बस्सी तृप्ति, 'सदियों से महिलाएं', (इकाई –1), इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ० सं०–**7**. https://egyankosh.ac.in//handle/123456789/65677
5. जिनागल सुरेश कुमार, 'पितृसत्ता के विविध रूप और स्त्री –प्रतिरोध', अपनी माटी, अंक 41, अप्रैल –जून 2022. https://www.apnimaati.com/2022/06/blog-post_93.html?m=1
6. बस्सी तृप्ति, 'सदियों से महिलाएं', (इकाई –1), इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ० सं०–**7,10**. https://egyankosh.ac.in//handle/123456789/65677

7. फ्रेडरिक एंजिल्स (हिंदी अनुवाद – नरेश नदीम), परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ० सं०–**170**
8. बस्सी तृप्ति, 'सदियों से महिलाएं', (इकाई –1), इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ० सं०–**7**. https://egyankosh.ac.in//handle/123456789/65677
9. नुना अनीता, 'भारतीय परिप्रेक्ष्य में जेंडर भूमिकाएं और पित्रसत्ता', (इकाई– 2), इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ० सं०–**27, 28, 43, 36–38**. https://egyankosh.ac.in//handle/123456789/46297
10. अमर उजाला दैनिक समाचार पत्र, 19 मार्च 2024, पृ० सं०–**10**.
11. शर्मा मोनिका, 'घर का श्रम और बाहर का', अमर उजाला दैनिक समाचार पत्र, 29 फरवरी 2024, पृ० सं०–**6**.
12. सारस्वत रितु, 'गृहणियों के काम के महत्व को कम न आंके', प्रभात खबर दैनिक समाचार पत्र, 29 फरवरी 2024, पृ० सं०–**10**
13. https://www.thehindu.com/hindi/editorial/the-hindu-hindi-editorial-translation-on-india-and-the-global-gender-gap-report-2024/article68299256.ece/amp/
14. वही
15. स्वरूप मनीषा, '100 शक्तिशाली महिलाएं', इंडिया टुडे, 28 दिसंबर – 3 जनवरी 2024, पृ० सं०–**34**.
16. https://hindi.newsclick.in/When-and-how-will-the-gender-gap-in-science-research-end
17. अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र, 19 मार्च 2024.
18. हिंदुस्तान दैनिक समाचार पत्र, 28 मार्च 2024, पृ० सं०–**14.**
19. गौतम श्रुति, 'भारत में महिला आन्दोलन', Retrieved 18 July 2025 from https://www.drishtiias.com/hindi/blog/women%27s%20movement%20in%20india
20. तिवारी सुरेश के, 'महिलाओं के विधिक– सामाजिक अधिकारः वर्तमान परिदृश्य', योजना पत्रिका, वर्ष 60, अंक 9, सितंबर 2016, पृ० सं०–**51– 52**.